Sanvahak, Vol.-1; Issue-2 (Oct.-Dec.) 2025 : PP-11-15

Sanvahak (संवाहक)

A Peer Reviewed, Multidisciplinary (All Subjects) & Multilingual (All Languages) Quarterly Research journal

ISSN : 3108-1347 (Online)
Vol.-1; Issue-2 (Oct.-Dec,) 2025
Page No.- 11-15
©2025 **Sanvahak**
https:// sanvahak.gyanvividha.com

Author's :
डॉ. हरिओम बादल
सहा. प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग,
पं. जे. एन. कॉलेज बांदा (उ. प्र.).

Corresponding Author :
डॉ. हरिओम बादल
सहा. प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग,
पं. जे. एन. कॉलेज बांदा (उ. प्र.).

जनजातीय समाजों में मानव–प्रकृति संबंध: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

सारांश : यह शोध–पत्र भारतीय जनजातीय समाजों में मानव–प्रकृति संबंध का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करता है। भारतीय जनजातियाँ सदियों से प्राकृतिक संसाधनों के साथ संतुलित एवं सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाकर जीवनयापन करती आई हैं। उनके जीवन–मूल्य, सांस्कृतिक परंपराएँ, धार्मिक आस्थाएँ, आजीविका प्रणाली और सामुदायिक संरचनाएँ प्रकृति पर आधारित हैं। यह शोध इस बात का विश्लेषण करता है कि किस प्रकार वन, जल, भूमि, जैव–विविधता, मौसम, पर्वत, पशु और पवित्र उपवन जनजातीय जीवन के अभिन्न अंग हैं। इस अध्ययन में पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान (Traditional Ecological Knowledge), संसाधन प्रबंधन, सतत विकास, औपनिवेशिक नीतियों, आधुनिक विकास परियोजनाओं, वन अधिकार कानूनों और पर्यावरणीय चुनौतियों का भी परीक्षण किया गया है। शोध–पत्र का उद्देश्य जनजातीय समाज और प्रकृति के संबंध की सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक परतों को समझना है, साथ ही यह भी देखना है कि आधुनिकता, बाजारीकरण, खनन, औद्योगीकरण और भूमि-अधिग्रहण किस प्रकार इस संबंध को प्रभावित कर रहे हैं। अध्ययन मे यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि जनजातीय समुदायों का पारिस्थितिक दृष्टिकोण जल–वायु–थल के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा मानव–प्रकृति संबंध की टिकाऊ समझ के लिए आदर्श मॉडल प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द - जनजाति, मानव-प्रकृति, सांस्कृतिक, आर्थिक, पर्यावरण, संरक्षण, विकास।

प्रस्तावना : भारत विविधता का देश है, और इस विविधता का एक महत्वपूर्ण घटक है-जनजातीय समाज। भारत में 705 से अधिक जनजातियाँ निवास करती हैं, जो कुल जनसंख्या का लगभग 8.6% हिस्सा बनाती हैं। इन समुदायों की विशिष्ट पहचान उनकी प्रकृति–केंद्रित

जीवन शैली है। जनजातीय लोग स्वयं को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि प्रकृति का हिस्सा मानते हैं। प्रकृति के साथ उनका संबंध आध्यात्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक—सभी स्तरों पर गहराई से जुड़ा हुआ है। जंगल केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवन का आधार हैं, पहाड़ केवल भौगोलिक संरचना नहीं, बल्कि पूर्वजों का वास–स्थल हैं, नदियाँ केवल जल–स्रोत नहीं, बल्कि देवी स्वभाव की मानी जाती हैं, पशु केवल जीव नहीं, बल्कि टोटेमिक (Totemic) पहचान का हिस्सा होते हैं। समाजशास्त्र प्रकृति और मानव के परस्पर संबंध को सामाजिक संरचना के संदर्भ में देखता है। इस दृष्टिकोण से जनजातीय समाज मानव–प्रकृति संबंध का सबसे समृद्ध और प्रामाणिक आदर्श प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत शोध–पत्र इन्हीं संबंधों की बहुस्तरीय विवेचना करता है कि वर्तमान पर्यावरणीय संकट के दौर में जनजातीय जीवन–दर्शन किस प्रकार सतत विकास के लिए वैकल्पिक मार्ग प्रदान करता है।

शोध की आवश्यकता : आज विश्व जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, जैव–विविधता संकट, मिट्टी क्षरण, जल–संकट और प्रदूषण जैसी समस्याओं का सामना कर रहा है। इस संदर्भ में मानव–प्रकृति संबंध को पुनः समझने की आवश्यकता बढ़ गई है। जनजातीय समाज इस दिशा में महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करता है, क्योंकि जनजातीय समाज प्रकृति के साथ संतुलित जीवन जीते हैं, वे उतना ही उपयोग करते हैं जितनी उन्हें आवश्यकता होती है। वे उपभोग नही करते—सह–अस्तित्व में विश्वास करते हैं-

1. उनका पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान वैज्ञानिक रुप से भी प्रमाणित है, औषधीय पौधों, मौसम, बीज–संरक्षण, जल–प्रबंधन, खाद्य–संग्रह, वन-जंतुओं के व्यवहार आदि पर उनका ज्ञान गहरा और परीक्षण योग्य है।
2. सतत विकास, जल संरक्षण, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण प्रबंधन में जनजातीय दृष्टिकोण अत्यंत प्रभावी माना जाता है, आधुनिक नीति निर्माताओं को इस ज्ञान से सीखने की आवश्यकता है।
3. विकास परियोजनाओं और भूमि अधिग्रहण से उनका संबंध अस्थिर हुआ है खनन, बांध, उद्योग, सैन्य परियोजनाएँ आदि ने उनके प्राकृतिक संसाधनों और जीवन–दर्शन को गहराई से प्रभावित किया है।
4. प्रकृति आधारित जीवनशैली वर्तमान पर्यावरणीय संकट का समाधान प्रस्तुत करती है। इसी कारण यह शोध अत्यंत प्रासंगिक है।

शोध उद्देश्य : इस शोध–पत्र के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. जनजातीय समाज और प्रकृति के संबंध की समाजशास्त्रीय समझ विकसित करना।
2. पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान और संसाधन प्रबंधन के तरीकों का विश्लेषण करना।
3. जनजातीय समुदायों में वन, जल और भूमि के सांस्कृतिक–धार्मिक महत्व का अध्ययन करना।
4. पर्यावरणीय चुनौतियों, खनन, विस्थापन और विकास परियोजनाओं के प्रभावों का मूल्यांकन करना।

अनुसंधान पद्धति : इस शोध-पत्र में द्वितीयक स्रोतों जैसे पुस्तकें, शोध-पत्र, सरकारी रिपोर्ट, जनजातीय अध्ययन आदि का उपयोग किया गया है। वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धति अपनाई गई है। जनजातीय समुदायों की पौराणिक कथाओं, गीतों, अनुष्ठानों, कृषि-पद्धतियों, एवं पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों का समाजशास्त्रीय रूप से विश्लेषण किया गया है।

सैद्धांतिक ढाँचा : इस शोध–पत्र में निम्नलिखित समाजशास्त्रीय सिद्धांतों और दृष्टिकोणों का उपयोग किया गया है:

(A) **पारिस्थितिक नृविज्ञान-** यह सिद्धांत मानता है कि, मानव समाज अपने पर्यावरण के साथ अनुकूलन बनाकर चलता है। जनजातीय समाज प्रकृति को नियंत्रित नहीं करते, बल्कि उसके साथ तालमेल में रहते हैं।

(B) **संरचनात्मक–कार्यक्षमतावाद-** इसके अनुसार- प्रकृति जनजातीय सामाजिक संरचना का एक आवश्यक कार्यात्मक अंग है। वन, जल, पशु, पर्वत—सभी सामुदायिक एकजुटता बनाए रखने में भूमिका निभाते हैं।

(C) **सांस्कृतिक पारिस्थितिकी=** यह दृष्टिकोण बताता है कि, संस्कृति का विकास पर्यावरणीय परिस्थितियों से प्रभावित होता है। जनजातीय संस्कृतियाँ अपने स्थानीय पर्यावरण के अनुसार विकसित हुई हैं।

(D) **इकोफेमिनिज़्म-** यह सिद्धांत कहता है, प्रकृति और स्त्री, दोनों के शोषण की संरचना समान होती है। जनजातीय

समाजों में स्त्रियाँ—बीज–संरक्षण, खाद्य–संग्रह और जल प्रबंधन की प्रमुख संरक्षक हैं।

(E) **नृवंशात्मक दृष्टिकोण-** क्षेत्रीय अध्ययन आधारित यह दृष्टिकोण दर्शाता है कि, जनजातीय जीवन अनुभव आधारित, समुदाय–केंद्रित और प्रकृति-आश्रित है। उनकी मान्यताएँ औपचारिक नहीं, बल्कि रोज़मर्रा के जीवन में जीवित होती हैं।

जनजातीय समाज और प्रकृति : भारतीय जनजातीय समाज प्रकृति को केवल जीवन–निर्वाह का साधन नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व का मूल आधार मानते हैं। जनजातियों का विश्व–दृष्टिकोण प्रकृति–केंद्रित होता है, जिसमें मनुष्य और पर्यावरण को एक ही जीवन–चक्र का हिस्सा माना जाता है। उनके लिए जंगल, पहाड़, नदी, पशु, पेड़–पौधे—सभी जीवित इकाइयाँ हैं, जिनमें आत्मा या पवित्र शक्ति निवास करती है। इसी कारण जनजातीय समुदाय वनों को "माई" (माता), पहाड़ों को "देव–स्थान" और नदियों को "जीवन–धारा" के रुप में श्रद्धापूर्वक मानते हैं। उनकी सांस्कृतिक परंपराएँ, रीति–रिवाज़, मिथक, टोटेमिक पहचान, कृषि चक्र, आजीविका प्रणाली और सामाजिक संगठन प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित होते हैं। प्रकृति न केवल उनके आर्थिक जीवन का केंद्र है, बल्कि यह सामाजिक एकजुटता, सामुदायिक सहयोग, और सांस्कृतिक निरंतरता की आधारशिला भी है। जनजातीय समाजों की आजीविका जैसे शिकार, संग्रहण, झूम कृषि, मधुमक्खी–पालन, रेशम–कीट–पालन, महुआ संग्रह, लाख उत्पादन आदि गतिविधियाँ पर्यावरण के साथ सह–अस्तित्व पर आधारित हैं, न कि उसके दोहन पर। वे उतना ही संसाधन लेते हैं जितनी आवश्यकता होती है, जिससे पारिस्थितिक संतुलन बना रहता है। जल–स्रोतों, पेड़ों और पशुओं के उपयोग पर उनके अपने सामुदायिक नियम और नैतिक नियंत्रण होते हैं, जिससे प्रकृति का संरक्षण स्वाभाविक रुप से होता है। उदाहरण के लिए, संथाल जनजाति के "जाहेर थान" पवित्र उपवन, गोंडों की टोटेमिक पशु–पूजा, भीलों का वर्षा–जल संरक्षण ज्ञान, और टोडा समुदाय की घासभूमि संरक्षण परंपराएँ इस संतुलित संबंध का प्रमाण हैं। इसके साथ ही, जनजातीय समाजों का पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान अत्यंत समृद्ध है, जिसमें औषधीय पौधों की पहचान, जलस्रोतों का पुनर्भरण, मिट्टी की उर्वरता, जैव–विविधता की रक्षा और पशु–व्यवहार की गहरी समझ शामिल है। प्रकृति के साथ यह जीवंत, संवादात्मक और संतुलित संबंध आधुनिक समाज के लिए एक सशक्त संदेश देता है कि विकास का वास्तविक मार्ग वही है जो पर्यावरण को साथ लेकर चलता है। इसलिए कहा जाता है कि जनजातीय समाज केवल प्रकृति में रहते नहीं हैं, बल्कि प्रकृति के साथ जीते हैं, उसके साथ आत्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संबंध बनाकर।

भारत के प्रमुख जनजातीय समुदायों का विश्लेषण : अब हम भारत के कुछ प्रमुख जनजातीय समुदायों और उनके प्रकृति संबंध का विश्लेषण करेंगे:-

1. **गोंड जनजाति-:** गोंड भारत की सबसे बड़ी जनजातियों में से एक है, जो मुख्य रुप से मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश के वन क्षेत्रों में निवास करती है। उनका जीवन प्रकृति और जंगलों पर गहराई से आधारित है। गोंड समुदाय पेड़ों, पहाड़ों और पशुओं को पवित्र मानता है तथा टोटेमिक कुल-प्रथा का पालन करता है, जिसमें हर कुल का एक विशेष पशु या प्राकृतिक तत्व से प्रतीकात्मक संबंध होता है। उनकी आजीविका झूम कृषि, महुआ संग्रह, शहद, लाख और वन-उत्पादों पर निर्भर करती है। गोंड समाज में "फिरल" या वन देवता की पूजा विशेष महत्व रखती है, जो मनुष्य और प्रकृति के संतुलन को दर्शाती है। प्रकृति-केंद्रित जीवनशैली के कारण गोंड जनजाति पर्यावरण संरक्षण, सामुदायिक सहयोग और सतत जीवन का एक सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती है।
2. **भील जनजाति:-** भील भारत की प्रमुख जनजातियों में से एक है, जो मुख्यतः राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात में पाई जाती है। यह जनजाति धनुष-बाण के उपयोग और साहसिक परंपराओं के लिए प्रसिद्ध है। भील लोग जंगलों और पहाड़ी क्षेत्रों में रहते हैं तथा कृषि, मजदूरी और वनोपज पर निर्भर करते हैं। इनके प्रमुख त्योहार भगोरिया और गवरी हैं, और ये अपनी विशिष्ट संस्कृति, लोककला और मजबूत सामुदायिक संरचना के लिए जाने जाते हैं।

3. **संथाल जनजातिः-** संथाल जनजाति झारखंड, पश्चिम बंगाल, बिहार और उड़ीसा में निवास करती है और भारत की सबसे बड़ी जनजातियों में गिनी जाती है। ये लोग मुख्यतः खेती, वनोपज और श्रम कार्य करते हैं। संथाल अपनी नृत्य-संगीत परंपरा, संताली भाषा और सामूहिक जीवन शैली के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके प्रमुख त्योहार बहा, सोहराय और करमा हैं। 1855 का संथाल विद्रोह इनकी साहसिक इतिहास का प्रमुख हिस्सा है।
4. **उरांव (ओरांव) जनजातिः-** उरांव जनजाति मुख्यतः झारखंड के रांची क्षेत्र में पाई जाती है और इनकी भाषा कुरुख है, जो द्रविड़ भाषा परिवार से सम्बंधित है। ये लोग कृषि प्रधान होते हैं और सामूहिक जीवन, सहकारिता तथा ग्राम पंचायत व्यवस्था पर आधारित होते हैं। इनके प्रमुख नृत्य झूमर और करमा हैं। उरांव जनजाति सूर्य और प्रकृति की पूजा करती है तथा सामाजिक जीवन में परंपराओं और साझा सांस्कृतिक मूल्यों को अत्यधिक महत्व देती है।
5. **टोडा जनजातिः-** टोडा जनजाति तमिलनाडु के नीलगिरी पर्वतों में रहने वाली एक छोटी और विशिष्ट जनजाति है। ये लोग मुख्यतः भैंस पालन पर निर्भर रहते हैं और इनकी अर्ध-गोलाकार झोपड़ियाँ "मुण्ड" कहलाती हैं। टोडा लोग अपने विशिष्ट परिधान "पुगा" और अनोखी धार्मिक परंपराओं के लिए प्रसिद्ध हैं। इनकी भाषा टोडा द्रविड़ परिवार की अलग शाखा है और ये प्रकृति तथा भैंसों को पवित्र मानते हैं।

आर्थिक–पर्यावरणीय संबंध : आदिवासी समाज की आर्थिक संरचना सीधे–सीधे प्रकृति और पर्यावरण से जुड़ी होती है। उनके लिए जंगल केवल संसाधन नहीं बल्कि जीवन का आधार है। वनों से मिलने वाले खाद्य पदार्थ, इमारती लकड़ी, औषधीय पौधे, शहद, महुआ, तेंदूपत्ता, साल के बीज तथा अन्य वनोपज उनकी आजीविका को संचालित करते हैं। खेती भी वर्षा आधारित और प्राकृतिक उर्वरकों पर निर्भर होती है, इसलिए उनकी कृषि स्थायी, कम लागत और पर्यावरण–अनुकूल मानी जाती है। आर्थिक गतिविधियों में प्रकृति का शोषण नहीं बल्कि संरक्षण प्रमुख होता है। वे उतना ही उपयोग करते हैं, जितना आवश्यक है, जिससे प्राकृतिक संतुलन बना रहता है। आधुनिक अर्थव्यवस्था जहाँ मुनाफे पर आधारित है, वहीं आदिवासी अर्थव्यवस्था पर्यावरण–संगत और सामुदायिक हित पर आधारित होती है।

धर्म–संस्कृति–प्रकृति : आदिवासी धर्म और संस्कृति का मूल आधार प्रकृति है। पेड़–पौधे, नदियाँ, पहाड़, पशु–पक्षी उनके लिए देवतुल्य हैं। अनेक जनजातियाँ महुआ, साल, पीपल, पहाड़ी देवता, जल देवता, अग्नि तथा सूर्य की पूजा करती हैं। इनके पर्व—करमा, सरहुल, सोहराय, भगोरिया—प्रकृति के चक्र, कृषि और ऋतुओं से जुड़े होते हैं। उनके मिथक और लोककथाएँ भी पर्यावरण संरक्षण के संदेश देती हैं। संस्कृति और आस्था ने उन्हें प्रकृति से संतुलित संबंध बनाए रखने की शिक्षा दी है, जिससे उनकी पूरी जीवनशैली पर्यावरण–केंद्रित बन गई है। इसी कारण उनकी जीवन पद्धति आज भी सतत मानी जाती है।

पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान : आदिवासी समाज के पास पीढ़ियों से संचित पर्यावरणीय ज्ञान होता है, जिसे पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान कहा जाता है। इसमें औषधीय पौधों की पहचान, जंगल के नियम, जानवरों के व्यवहार, मौसम के संकेत और मिट्टी–जल संरक्षण के तरीके शामिल हैं। वे प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग का ऐसा संतुलन बनाते हैं जिसमें पुनर्नवीनीकरण की क्षमता बनी रहती है। यह ज्ञान वैज्ञानिक अध्ययन का भी महत्वपूर्ण स्रोत है, क्योंकि आदिवासी लोग जंगल और पर्यावरण को निकटता से समझते हैं। आज की पर्यावरणीय नीतियों में पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान को शामिल करने की आवश्यकता बढ़ती जा रही है, ताकि विकास और संरक्षण दोनों संतुलित तरीके से चल सकें।

वन–जल–भूमि संबंध : आदिवासी जीवन वन, जल और भूमि के त्रिकोणीय संबंध पर आधारित है। जंगल वर्षा को नियंत्रित करते हैं, नदियों को जीवन देते हैं और मिट्टी को उपजाऊ बनाते हैं। आदिवासी समुदाय इस प्राकृतिक चक्र को समझते हैं और उसे बनाए रखने के लिए परंपरागत नियमों का पालन करते हैं। वे जलस्रोतों को पवित्र मानते हैं और उनके निकट प्रदूषण नहीं करते। खेती में जल का संयमित उपयोग किया जाता है जिसे हम आज "सतत जल

उपयोग" कहते हैं। भूमि को माँ की तरह सम्मान दिया जाता है, इसलिए बेतरतीब खनन, अति-कटाई और रासायनिक खेती उनकी पारंपरिक प्रणालियों में शामिल नहीं है। उनकी प्रथाएँ पर्यावरणीय संतुलन का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

पर्यावरणीय चुनौतियाँ : आज आदिवासी समाज अनेक पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है। सबसे बड़ा संकट है—विस्तारित वनों की कटाई, जिसके कारण वन्य जीव, जलस्रोत और पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित हो रहे हैं। दूसरी बड़ी चुनौती है खनन परियोजनाएँ, जो उनकी भूमि और जंगल को नुकसान पहुँचाती हैं। आधुनिक विकास परियोजनाओं—डैम, उद्योग, सड़क निर्माण ने उनके पारंपरिक संसाधनों और आवास को खतरे में डाल दिया है। जलवायु परिवर्तन से वर्षा चक्र बदल रहा है, जिससे उनकी कृषि और वनोपज आधारित अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है। इन चुनौतियों के बीच भी आदिवासी समुदायों की पर्यावरण-अनुकूल जीवनशैली संरक्षण और स्थायी विकास के लिए एक महत्वपूर्ण मॉडल बनी हुई है।

निष्कर्ष : आदिवासी समाज भारतीय संस्कृति का वह महत्वपूर्ण अंग है जिसने सदियों से प्रकृति और पर्यावरण के साथ संतुलित जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया है। इन समुदायों की आर्थिक व्यवस्था, धर्म, संस्कृति, सामाजिक संरचना और पारिस्थितिक ज्ञान पर्यावरण संरक्षण पर आधारित है। उनकी जीवन-पद्धति दर्शाती है कि मानव और प्रकृति का संबंध शोषण पर नहीं, बल्कि सहअस्तित्व पर आधारित होना चाहिए। आज जब वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन, जंगलों का क्षरण, जैवविविधता की हानि और प्राकृतिक संसाधनों की कमी जैसी समस्याएँ गहराती जा रही हैं, तब आदिवासी समुदायों की पारंपरिक पर्यावरणीय समझ आधुनिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करती है। वर्तमान चुनौतियों खनन, वनों की कटाई, विस्थापन और जलवायु परिवर्तन—के बीच इस ज्ञान को संरक्षित करना न केवल आदिवासी समुदायों के अस्तित्व के लिए बल्कि संपूर्ण मानव सभ्यता के टिकाऊ भविष्य के लिए आवश्यक है। इसलिए यह जरूरी है कि नीतियों में आदिवासी अनुभव, अधिकार और पारिस्थितिक ज्ञान को सम्मानपूर्वक शामिल किया जाए। आदिवासी जीवनशैली हमें यह सिखाती है कि प्रकृति केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवन का आधार है।

संदर्भ सूची :

1. Baviskar, A. (2019). In the belly of the river: Tribal conflicts over development in the Narmada Valley. Oxford University Press.
2. Bhasin, V. (2012). Ecology, culture and change: Tribals of India. Journal of Human Ecology, 37(3), 163–177.
3. Bose, N. K. (2010). Tribal life in India. National Book Trust.
4. Elwin, V. (2007). The religion of an Indian tribe. Oxford University Press.
5. Gadgil, M., & Guha, R. (1992). This fissured land: An ecological history of India. University of California Press.
6. Majumdar, D. N. (2014). Races and cultures of India. Asia Publishing House.
7. Singh, K. S. (1994). The scheduled tribes. Anthropological Survey of India.
8. Xaxa, V. (2005). Politics of language, religion and identity: Tribes in India. Economic & Political Weekly, 40(13), 1350–1356.
9. Ministry of Tribal Affairs. (2021). Statistical profile of scheduled tribes in India. Government of India.
10. Planning Commission. (2013). Report on socio-economic status of tribal communities. Government of India.

•